National Journal of Advanced Research
Online ISSN: 2455-216X; Impact Factor: RJIF 5.12
www.allnationaljournal.com
Volume 3; Issue 2; May 2017; Page No. 67-69

मनुष्य के भयावह चेहरे की व्याख्या

डॉ. नीना शर्मा

आचार्या, आणंद आर्ट्स कॉलेज, आणंद, गुजरात, भारत।

प्रस्तावना

डॉ. शंकरशेष का मुख्यतः दूरदर्शन के लिए लिखा यह नाटक आधुनिक जीवन की व्याख्या को एक अलग ढंग से प्रस्तुत करता है। आज के आधुनिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी पहचान बनना चाहता है लेकिन अपनी पहचान छुपाकर। चेहरों पर चेहरा लगा कर जीने वाला आदमी धीरे-धीरे अपनी असली पहचान ही खो चुका है।

डॉ. शंकर शेष न इस नाटक को एक मृत्यु के प्रसंग के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गांव के एक चर्चित व्यक्ति भरोसे जी की श्मशान यात्रा में आए हुए व्यक्तियों के चेहरे दिखाए हैं। बारिश के कारण एक खंडहर के रूके व्यक्ति के चेहरे वक्त की आभा में पिघल पिघल कर टपकने लगते हैं। और असली चेहरे की भयानकता सामने आने लगती है। एक दूसरे को नोचता खसोटता व्यक्ति मनुष्य से पशु बन चुका है।

समाज का प्रत्येक वर्ग अपने आप को श्रेष्ठ साबित करना चाहता है। पराई स्त्री पराया धन को हड़पना जिनकी नियति बन चुकी है। राक्षसी दांतों से दूसरे का खून चूस लेने पर भी देवता होने का दंभ भरते हैं भोले भाले ग्रामीण को लूटकर अपनी भूख मिटाता आदमी पशु समान नजर आता है।

डॉ. शंकर शेष ने इसी पशुता और मानवता के भेद को व्यक्ति के चेहरों के नकाब उतार कर व्यक्त करने की कोशिश की है। और नकाब के पीछे की क्रूरता बाहर आ जाती है। मंत्री का भी राजनीति का स्वार्थ केन्द्र मान लेना मनुष्य जीवन की निम्नता का परिचय है। डॉ. शेष का यह नाटक निश्चित ही समाज का असली और नग्न चेहरा हमारे समाने लाता है।

आधुनिक जीवन की जटिलता ने मनुष्य को तो दूर किया ही है लेकिन मनुष्य स्वयं अपने आप से भी दूर हो गया है। बढ़ती क्रूरता और खतम होती संवेदना मानव को बदल बौना बना दिया है। एक दोहरी जिन्दगी जीता मनुष्य अपनी ही सच्चाईयों से दूर भागता है। यह पूरा समाज इसी दलदल में दिन प्रतिदिन अपनी सच्चाई को खोता जा रहा है। डॉ. शंकर शेष ने समाज की इसी विद्रूपता के चेहरे को अपने नाटक के दर्शाया है। यह नाटक मुख्यतः दूरदर्शन के लिए लिखा गया है।

गाँव के एक व्यक्ति भरोसेजी की मृत्यु ने सभी के चेहरे खोल कर रख दिए है। समाज की भयानकता को चेहरे के माध्यम से व्यक्त किया गया है। भरोसे जी का दाह संस्कार करने का आए व्यक्ति बारिश के कारण खण्डहर में शरण लेते है वहीं समाज के दूसरे चेहरे कमली औ विनोद फिल्मी दुनिया की चकाचौंध में फसे युवा वर्ग जो घर से भाग काल्पनिक सपनों की दुनिया में जी रहा ह। बिजनेसमेन कुमार ओर खम्बाटा की नीतियाँ और इन्हीं में भारत का सच्चा स्वरूप भोला भाला ग्रामीण। और इन सब के अतिरिक्त भरोसेजी की शवयात्रा में आए ग्रामीण की भयानकता। ये सभी जैसे एक के बाद एक इस समाज की सच्चाई को व्यक्त करती है। ''प्रतिष्ठा के मुखौट पहनकर प्रतिष्ठित आदमी बनकर समाज को निर्मम शोषण करने वाले चेहरे आज हर कहीं नजर आते हैं।''[१]

समाज की यह भयावहता 'चेहरे' नाटक में एक एक करके खुलती जाती है। एक दूसरे की कमजोरी का लाभ उठाना आज के आदमी की फितरत हो गई है प्रत्येक आदमी इसी ताक में है कि कहां से और कैसे लाभ प्राप्त किया जाए।

''कुमार... क्यों बेकार दिमाग खपाए? इन सब लोगों को देख यहां बेहद पावरटी है। अपने प्रोजेक्ट के लिए लेबर बेहद चीप मिल सकता है। अकेले लेबर से कम से कम दो लाभ रूपए साल के बच जाएंगे।''[२]

शोषण की यह प्रवृत्ति आदमी से आदमी को दूर करती जा रही है। किसी भी प्रकार अपना भला सोचता और शोषण की तलवार से किसी का भी गला काट देना आधुनिक समाज की इस भयावहता का यह रूप पूंजीवादी सभ्यता की देन है लेकिन प्राचीन समाज के अंधविश्वासों और रीति रिवाजों ने भी इस समाज का शोषण किया है। चेहरे में डॉ. शेष ने इसका चित्रण किया है।

> ग्रामीण क्या करे मालिक, गांव मे रहकर उसके रीति रिवाज है तो अलग नहीं चल सकते।

''इतना समान बनवाने में और कपड़ा लत्ता खरीदने में कर्जा बढ़ गया है।''[३] एक मृत्यु के प्रसंग में समाज की भयावहता का खोलता यह नाटक 'चेहरे' के पीछे चेहरे को हमारे सामने लाता हैं। एक दूसरे पर कीचड़ उछालना मौत में भी टाईम पास के क्षण ढूंढना अपनी राजनीति की भूमिका तैयार करना डॉ. शेष की कुशल लेकनी से बाहर आया है। बाहर से ढका छिपा यह समाज अपने अंदर विद्रूपता का कीचड़ भरे बैठा है। इस कीचड़ में हर किसी के हाथ सने है लेकिन अपने आप को बेदाग मान कर चलने वाला व्यक्ति उस कीचड़ में पत्थर फक एक दूसरे पर कीचड़ उडेलने को तत्पर दिखाई देता है। ''जीवन की शमशानी विकृतियों को उभार कर नाटककार अपने उद्देश्य का समप्रेषण करता है।''[४] इस नाटक में नैतिकता के सारे प्रश्न बेमानी से लगते हैं। जहां मौत भी तमाशा बन गई है मौत से जिंदगी ज्यादा जरूरी है दुख औ सुख की सारी प्रश्नावली खोखली है। लाश के पास बैठ कर भी पूरी और कचोरो के लिए लार टपकाते ये चेहरे समाज का असली चेहरा दिखा देते हैं।

''अध्यापिका-अगर लोग खाना चाहते हैं तो उन्हें खाने दीजिए भवानी जी। अगर मृत्यु शरीर का अंतिम धर्म है तो भूख उसका निरन्तर स्वभाव। खाने दीजिए उन्हें। वरना उनका पूरा मन केवल पूरी कचौरी में ही अटका रहेगा।''[५] डॉ. शेष ने समाज के प्रत्येक वर्ग की नस को पकड़ा है और उसकी असलियत का स्केच चेहरे के रूप में उतार कर रख दिया है। जीवन के मूलभूत प्रश्नों को उल्लेखित करती कथा चेहरे की भयानकता को दर्शाती है। आज के आधुनिक समाज में मनुष्य का मनुष्य मानने में डर लगता है। पशुता की सीमा को पार कर चुका मानव विकास की सीढ़िया चाहे कितनी ही ऊँची चढ़ा हो लेकिन नैतिकता की दृष्टि से वह गर्त में जा चुका है प्रत्येक व्यक्ति अवसर का लाभ उठाना चाहता है। समाज का प्रतिष्ठित माना जाने वाला वर्ग भीअपने असली चेहरे में बहुत भयानक है। भरोसेजी की मृत्यु का लाभ उठाकर कोई अपनी राजनीति की रोटियां सेक रहा है तो कोई अपने बचाव के लिए एक दूसरे परकीचड़ उछालना चाहता है। नैतिकता की कोई व्याख्या नजर नहीं आती। धर्म के ठेकेदार भी धर्म के नाम पर शोषण कर चक्र चलाए हुए हैं। धर्म के नाम पर हमेशा से ही शोषण होता आया है। पण्डित के लिए धर्म की व्याया भी समय

और व्यक्ति के अनुसार बदल जाती है। उन्हें अछूतों के हाथ का पानी नहीं चलता लेकिन उनकी औरतों से कोई परहेज नहीं है। धर्म के इन ठेकदारों ने अपनी सुविधा और अपने महत्त्व को बनाए रखने के लिए आम आदमी के विशवास को जितना लूटा है संभवतः वह क्रूर दमन चक्र का सबसे भयानक पहलू है। युवा वर्ग मौत के गंभीर पलों में भी अपने टाइम पास की चिन्ता में घुला जा रहा है। कल का भविष्य समय व्यतीत करने के लिए बेचैन नजर आता है और युवा पीढ़ी अचानक बूढ़ी नजर आने लगती है। डॉ. शंकर शेष एक एक चेहरे को अपनी तीक्ष्ण आंखों के निरीक्षण से तोला है और बोला है।

आज के इस युग में असलियत के साथ जीना संभव है। मनुष्य की असली पहचान समाप्त हो चुको है। यह दोहरी जिन्दगी जीने पर विवश है। भागदौड़ भरी इस जिन्दगी में नैतिकता के सारे प्रश्न बहुत पीछे छूट गए है और नैतिकता छटते ही विकृति चेहरा सामने आ गया है उसी को ढकने के लिए हर एक ने अपने चेहरे पर एक चेहरा छिपा लिया है। असली समाज की इस विकृति को दर्शाने के लिए डॉ. शेष ने इन नकली मुखौटो को उतारने की कोशिश की है। एक अर्थो के दाह संस्कार में आए व्यक्तियों के चेहरे एक के बाद एक खुलते जाते है और समाज का असली चेहरा सामने आ जाता है। एक दूसरे से किए गए संवादों में एक एक करके सब मुखौटे उतरते जाते है। विनोद अपने प्रेमजाल में फसाकर कमली को लूट लेना चाहता है और उसी में शामिल हो जाता है एक और चेहरा गेदासिंह का। अवसर का लाभ उठाना चही इस समाज की असलियत है। ''गेदासिंह–यही कि हम गहनों को आपस में क्यों न बांट ले। आधे गहने लेकर तू चुपचाप खिसक जा। क्या समझा? किसी को कानो कान खबर तक न होगी।''[६] समाज के इस क्रूर यथार्थ ने सारी विद्रूपताओं को खोल कर रख दिया है। सभ्य कहलाने वाला यह समाज स्थितियों के बदलते ही अपने असली रूप में आ जाता है। उसका यह रूप बहुत ही भयानक है। ''इस सांसारिक मंच पर सुबह उठने से लेकर रात सोने तक आदमी अभिनय ही करता है न जाने किसने कितने लबादे ओढ़ रखे है। जो वह ऊपर से दिखाई देता है वस्तुतः वह नहीं है अथवा कोई और नहीं कहा जा सकता। चेहरा पर चेहरा पढ़ाए आज हर आदमी अपने असली चेहरे को छुपाए है।''[७] इन्हीं सब मुखौटो के पीछे समाज का असली चेहरा छिपा है। हर पल अभिनय करता आदमी अपनी असलियत ही खो चुका है। जो वह नहीं है वह वहीं बताने की चेष्टा में लगा हुआ है। फिल्मी दुनिया की रूपहली चमक के पीछे को कालिमा इतनी गहरी है कि चेहरे की पहचान ही समाप्त हो चुकी है। विनोद और कमली को प्रसंग असी कालिमा के पहते को उठाता है। विनोद अपनी पहचान से अलग पहचान को बताने की कोशिश करता है। सच की कड़वाहट से झूठ की मिठाश अधिक अच्छी है और आदमी इसी झूट की मिठास में अपने सपने को साकर करने की झूठी कोशिश में लगा रहता है।

''विनोद–तो क्या इसको ये बताए कि हम लाइटमैन होता? इंडस्ट्री में सच बोलने का रिवाज बहुत कम होता मिस्टर। क्लैप ब्वाज उदर अपने को असिस्टैंट डायरेक्टर बोलता। और ढोलकी बजाने वाला अपने को साइड हीरो बोलता। ऐसा ही उदर का रिवाज होता। अपुन को अपना इज्जत कचरा करना नई मांगता।''[८] यह सच है कि आदमी असली पहचान खोकर ही इज्जत कमाने की कोशिश में लगा हुआ है। न्याय की पहचान सत्य के दूसरे रूप से होतो है । सत्य और न्याय का चोली दामन का साथ है लेकिन चेहरे नाटक में पंच भी मुखौटो को धारण किए हुए है। सबके चेहरे एक एक कर पिघलकर टपकने लगते है। ऐसे बगुला भगत ही समाज के ठेकेदार बन बैठे है। नाटक में पन्द्रह चेहरे है लेकिन इन पन्द्रह चेहरों के भीतर ऐसे अनगिनत चेहरे है जिनकी भायवहता से पूरा समाज कंपायमान है। ये मुखौटो के पीछे भेड़िए स्वार्थ के मांस की लालच में एक दूसरे के चेहरे को नोंच नोंच करउतारने लगते हैं। गेंदासिंह इस बात से सुखी है कि वह अकेला चोर नहीं है उसके साथ ऐसे अनेक डाकू भी है जो उससे भी बड़े अपराधी है।

''गेंदासिंह.... थोड़ी देर के लिए मेरी नियत खराब हो गयी होगी। लेकिन मैंने किसी बुढ़िया को दौलत के लालच में आकर कुएं में तो नहीं धकेला... ये जो पंच बनकर बैठे हैं उनसे पूछिए। अगर पंचायत के पैसा का गबन करने वाला पंच बन सकता है, और गरीब विधवा को दगा देकर उसके खेत अपने नाम लिखाने वाला पंच बन सकता है तो कोई बात नहीं। अगर मैं चोर हूं तो ये भी है।''[९]

क्या यही समाज है एक दूसरे पर गिद्ध दृष्टि रखने वाला व्यक्ति क्रूर और नग्न दिखाई देता है। स्वयं अपने आप को पाक और साफ मानते है लेकिन दूसरों का दोष त्वरित ही देख लेते हैं। दिनकर की एक पंक्ति याद आती है।

निज आंखों से नहीं सूजता सज है अपना भाल

अपना भाल देखने को आई ने की जरूरत होगी और उसने आई ने में दिखने वाली शक्ल कितनी भयानक होगी। गेंदासिंह अपने अपराध को कबूल कर दूसरों की विद्रूपता को उधड़ने लगता है। भरोसेजी और अध्यापिका के संबंधों पर प्रश्न चिह्न लगा देता है। लेकिन अध्यापिक के संवादों से झूठ की चाशनी अचानक ही टपककर गिर पड़ती है और सभी का चेहरा सामने आ जाता है। धर्म के नाम पर शोषण न्याय और अन्याय का भेद सब कुछ। पण्डित को अछूतों के हाथ का पानी नहीं चलेगा लेकिन उनकी औरतों से उनको कोई परहेज नहीं है। भवानीजी के लिए वेश्या की कमाई पाप है लेकिन उसका यौवन उसके लिए तीरथ स्थान है। शवयात्रा में आए है लेकिन ग्रामीण की पूरी कचौरी पर नजर है। मृत्यु के समय भी टाइम पास न होने का गम सता रहा है अगली बार टांजिस्टर और ताश ले आने का प्रण भी कर लिया जाता है यही है समाज के असली चेहरे।

''अध्यापिका... ये लोग पंचायत बनाकर बैठ गए जरा अपना चेहरा तो देखें। क्यों नहीं देते ये गेंदासिंह के सवालों का जवाब? ये डरते हैं कि इनके चेहरे अपने आप पिघलकर टपकने लगेगे। और सामने आएगी इनकी भेड़ियों की शक्ल....''[१०]

मुखौटो के साथ जीने वाला आदमी संवेदन हीन हो गया है। इसी को सच्चाई मानकर वह जी रहा है। हर दिन नया चेहरा हर पल नई पहचान हर एक के साथ नई नीति। सब कुछ नफ और नुकसान में बंट गया है। डॉ. विनय ने 'चेहरे' नाटक की भूमिका में लिखा है। ''चेहरे अर्थात हमारे चेहरे सबके चेहरे अंदर से कुछ बाहर से कुछ दिखने वाले चेहरे। चोर की खाल में ईमानदार और साहू की खाल में चोर.... जो जैसा दिखता है वह वैसा भी है या नहीं?... प्रत्येक चेहरा खुद ही अपनी वास्तविकता व्यक्त करने पर विवश हो जाता है।''[११]

वास्तविकता को व्यक्त करने की विवशता में जीता आदमी मानव से पशु बन गया है। संभवतः आज के इस संवेदना हीन समाज में एक मुखौटे की जरूरत को शंकर शेष ने दर्शाया है। यह मुखौटा उतरेगा तो न वह जी सकेगा और न वह इस समाज को जीने देगा। यह नकली चेहरा समाज को गुमराह किए हुए हैं।

''इस खौफनाक चेहरे के नीचे दूसरे चेहरे भी हैं जो दुनिया और समाज की आंखों में धूल झोंक ऐसे महापुरुष को आदर्श बनाने का खोखला दम्भ भरते हैं।''[१२]

'चेहरे' नाटक से डॉ. शंकर शेष ने समाज की उस कमजोर नस पर हाथ रख दिया है जिसके रखते ही पूरा समाज चीत्कार कर उठा है। मुखौटे के पीछे की दुनिया को केमरे की रोशनी में उजागर कर दिया। नकली मुखौटो के पीछे के असली चेहरों को समाज को दिखा दिया है।

संवेदन शून्य मानव की संवेदनशील कथा

इस भौतिकवाद ने मानव को मशीन बना दिया है सुख की परिभाषा का केन्द्र ध्यान और ऐश्वर्य तक सीमित हो गया ह। पैसों के पीछे भागता मानव संवेदनहीन हो चुका है। उसके अंदर की संवेदना का

पौधा सूख चुका है। यहां तक कि किसी की मृत्यु भी उनके मन में संवेदना नहीं जगाती कोई किसी के गहनों पर दृष्टि गढ़ाए हुए है तो कोई किसी भोले भाले ग्रामीण की भोजन सामग्री पर लार टपका रहा है। उन्हें शव के पास बाठ पूरी कचौरी खाने मे भी कोई संकोच नहीं है। दुख को इस घड़ी में भी युवावर्ग टांजिस्टर और ताश न होने पर टाइम पास की समस्या पर चिंतित है और अगली बार इन वस्तुओं को साथ लाने का प्रण करता है। पंचायत के पंच अपनी राजनीति की रोटी सेंकने में व्यस्त हो गए हैं।

''धुरीहीन जीवन ने मनुष्य को संवेदना ही बना दिया है। उसकी रग रग में बनावट, अस्वीकार मौका परस्ती के बीज फ्टने के लिए सिर उठा रहे हैं। बिना कारण के वह किसी से सहानुभूति नहीं रखता। शायद आज की विडम्बित स्थितियों ने उसे यही सत्या दिाय है।''[१३] उसकी इस बनावट की स्थितियों ने सत्य को छिपा दिाय है। मानव जीवन का यह सत्य डॉ. शेष के नाटक चेहरे में उभर कर आया है। मानव की जब से संवेदना मरी है वह अधिक क्रूर हो गया है। सारे संबंध स्वाथं पर टिक गए है। सहानुभूति, प्रेम, प्यार, ममता जैसी कोई संवेदना जीवित नहीं रही हैं। इस नाटक में ऐसे ही संवेदन शून्य मानव की कथा को उजागर किया है।

''युवा-३ यार, तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे तुम्हारा कोई रिश्तेदार मर गया हो। अरे छोड़ो यार, भरोसेजी हमारे कौन थे जो हम रोते फिरे ?''[१४]

ये खत्म होती संवेदना निश्चित ही मानव सभ्यता के विनाश की पहली सीढ़ी है। उचित और अनुचित का ज्ञान होते हुए भी वही करते है जो अनुचित है। एक दूसरे को सलाह सूचना दे रहे हैं। लेकिन स्वयं अमल नहीं कर रहे हैं। गहनों को देख कर गेंदासिंह की नित खराब हो जाती है। विनोद के साथ मिलकर वह भी उसमें हिस्सेदार बन जाता है कि बदलनामी का डर सब कुछ ढक देगा।

''गेंदासिंह तुम जानते तो हो न, लड़की की सगाई एक बड़े घर में हो चुकी है। अगर पुलिस में गहनों की बात हुई तो लड़की के भागने की बात सामने आ जाएगी। लड़की का बाप बदनामी से डरेगा। बात पुलिस तक जाएगी ही नहीं।''[१५] प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की मजबूरी उसकी विवशता का फायदा उठाने में लगा हुआ है। समाज का यह संवेदनहीन परिवेश मनुष्य के पशु होने की बात खोल कर रख देता है। विकास की प्रक्रिया में हम पुनः पीछे की ओर गए है। पशु से मनुष्य बना मानव आज पुनः मनुष्य से पशुता की ओर बढ़ रहा है। गिद्ध दृष्टि रखे हुए एक दूसरे पर झपट्टा मारने उसे नोचने खसोटने को तैयार है। मरे हुए जानवर का भी मांस खाने को तैयार पशु घृणा और नफरत का अधिकारी है लेकिन आज का मनुष्य भी इसी पशुता के आचारण को कर रहा है। एक मरे हुए व्यक्ति की लाश के पास बैठकर भी अपनी संवेदनाओं को ताक में रख कर वह अपने स्वार्थ के बारे में विचार कर रहा है। उसकी संवेदना इतनो मर चुकी है कि लाश के सामने भी वह भोजन करने को तैयार है। किसी भी प्रकार वह उस भोले भाले ग्रामीण की भोजन सामग्री हड़प लेना चाहते हैं।

पंडितभाई मसान की चीज को अच्छा नहीं मानते। इससे नुकसान हो सकता है। उसके गर्भ पर भी इसका असर पड़ सकता है।

पंडित-देखो, भाई, तुम हम लोगों को गलत समझ रहे हो। जहां तक हम पंचों का सवाल है, हम लोग, कई दिनों तक भूखे रह सकते हैं। सवाल तो हमारे भाइयों का है पता नहीं कितने लोग घर से खाकर चले है और कितने लोग वैसे ही। क्यों भाइयों, आप लोगों को भूख लगी है या नहीं।''[१६]

यह मानव कहां जाकर अपनी सीमा के अन्त करेगा। भौतिकवादी संस्कृति में अपने आप को बचा लेने की प्रवृत्ति ने ही मनुष्य को संवेदनशून्य बना दिया है। संबंधों की इस भुरभुरी रेत से बनी दीवार स्वार्थ के हल्के से झटके से भरभरा कर गिर जाती है। समाप्त होते ऐसे संबंधों की दास्तान कहता डॉ. शेष का नाटक 'चेहरे'प्रत्येक चेहरे के मुस्कान के पीछे की क्रूर हंसी को दर्शाता है। अपनी संवेदनाओं को खर्च करने की एवज में भी वह कुछ न कुछ चाहता है। संवेदनाओं से गहरा रिश्ता जोड़ने वाला मनुष्य धर्म को अपनी संवेदना से सबसे निकट मानता है। लेकिन धर्म के ठेकेदार ही धर्म को ताक में रख पहले अपना आप को बचाने में लगे हैं। लोगों का धर्म का अर्थ बताने वाला पंडित ही अपने धर्म को भूल कर खाने पर अपनी नजर टिकाए हुए हैं।

यह संवेदनशील समाज अपने अतीत की सारी परछाइयों को पीछे छोड़ आया है। प्रगति पथ पर वह जितना आगे बढ़ा जा रहा है अपनी संवेदनाओं को वह कुचलता और रौंदता चल रहा है। साथ ही युवा वर्ग जो इस देश का भविष्य है। उसी भविष्य में संवेदनहीनता की जोंक लग चुकी है। यह संवेदनहीन वर्ग कल के भविष्य पर एक प्रश्न चिह्न है। मौत की इस घड़ी में इस वर्ग के लिए समस्या है वक्त काटना। उन्हें इस बात की चिन्ता रही है कि वह ताश या टांजिस्टर साथ क्यों नहीं लाए हमारा यह खोखला भविष्य अपने असली चेहरे के रूप में हमारे सामन आता है।

युवा-१ लेकिन सवाल है कि हम करे क्या? वक्त कैसे काटे?
युवा-२ राजनीति, फिल्मी स्टार, मौसम शिक्षा पद्धति...सभी विषय तो निपट चुके। समझ में नहीं आता और किस विषय पर बात करें?
युवा-३ टांजिस्टर होता तो वक्त आसानी से कट जाता है।
युवा-४ अगली बार से ताश जरूर साथ रखेंगे।[१७]

यह संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है। पूंजीवादी सभ्यता ने हमारी संवेदना को इतना मार दिया है कि वह किसी की मौत से भी जीवित नहीं हो सकती है। शोक मनाने के लिए भी मौत की गंभीर बात को बनाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। मनुष्य जीवन की पाशविकता को दर्शाता यह नाटक अपने आस पास के परिवेश को बहुत ही सूक्ष्मता एवं तीक्ष्णता से प्रस्तुत करता है। ''आज व्यक्ति, व्यक्ति के रूप में बंट गया है। व्यक्ति ही क्यों उसका व्यक्तित्व भी द्रोपदी हो गया है। उसका एक हिस्सा कुछ और चाहता ह दूसरा कुछ और। अपने आस पास के परिवेश की संवेदनाहीन भयावहता पर यह नाटक एक करारा तमाचा। लेकिन फिर भी चेहरे की निर्मम रेखाएं बदलती नहीं है।''[१८]

नाटककार ने बदलते परिवेश के बदलते चेहरे की कथा को इस नाटक में प्रस्तुत किया है। आज के मानव की संवेदनहीनता और उसकी पाशविकता को दर्शाया है। यह संवेदनशून्यता इस कदर है कि लोग मानवीयता को भूल कर मशीन हो जाते हैं। सब कुछ एक तमाशा बन कर रह गया है। ''दो मिनिट के मौन में भी लोग साले सिर नीचा करके फिसिट फिसिट हंसते हैं।''[१९] इस संवेदनशीलता की पराकाष्ठा यह है कि भरोसे जी की मृत्यु के शोक में सब शामिल होते हुए भी अपनी अपनी मौत में है लेकिन जब अंत में प्रेस रिर्पोटर आते है तो सभी लोग अलग अलग मुद्राओं में फोटो खिंचवाने लगते हैं। दिखावा ही आज के जीवन का मूलमंत्र रह गया है। अपने चेहरे पर चेहरा लगा कर अपने असली चेहरे को छिपाईये। इस प्रकार डॉ. शेष ने इस संवेदनशून्य मानव की संवेदनशील कथा को प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. रंगकर्मी नाटककार शंकर शेष डॉ. प्रकाश जाधव, पृ. १०४
2. शंकर शेष रचनावली भाग-३ संपा. डॉ. विनय, पृ. २४३
3. वही,पृ. २४८
4. शंकर शेष का नाट्य कर्म एवं रंगदृष्टि-डॉ. वीणा गौतम, पृ. ३२३
5. शंकर शेष रचनावली भाग-३ पृ. २६९
6. वही, पृ. २७८
7. शंकर शेष का नाट्य कर्म एवं रंगदृष्टि-डॉ. वीणा गौतम, पृ. ३२०
8. शंकर शेष रचनावली भाग-३ संपा. डॉ. विनय, पृ. २६६
9. वही, पृ. २७६